श्री समयसार, बारहवें कलश का भावार्थ।

बारहवाँ कलश हुआ न? **भावार्थ — शुद्धनय की दृष्टि से देखा जाये....** बारहवाँ कलश है, उसका भावार्थ है। आत्मा को शुद्धनय अर्थात् निश्चयदृष्टि से- त्रिकाली ज्ञायकभाव को देखने से **सर्व कर्मों से रहित....** भगवान आत्मा तो है। दर्शन की

व्याख्या है, सम्यग्दर्शन (की व्याख्या है)। **सर्व कर्मों से रहित....** राग आदि से भी रहित **चैतन्यमात्र देव....** यह तो देव शक्ति / दिव्य का धारक देव भगवान आत्मा चैतन्यदेव **अविनाशी**.... वह कभी नाश नहीं होता। पर्याय पलटती है, उसमें वह नहीं आता। आहा!

आत्मा अन्तरंग में स्वयं विराजमान है।.... अन्तर में — ध्रुव में सारे असंख्य प्रदेश हैं, प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। क्या कहते हैं? यह असंख्य प्रदेश है तो ऊपर-ऊपर पर्याय है — ऐसा नहीं। सब प्रदेश अन्दर में प्रदेश पर पर्याय है। इस पेट में-अन्दर में असंख्य प्रदेश हैं तो प्रत्येक प्रदेश ऊपर पर्याय है। आहाहा! इस पर्याय को तल में-ध्रुव में लगाकर, आहाहा... पाताल में भगवान ध्रुव अन्दर पड़ा है। स्वयं विराजमान भगवान है, उसको (यह) **प्राणी — पर्यायबुद्धि बहिरात्मा.... उसे बाहर ढूँढ़ता है,....** पर्याय की अंशबुद्धि राग (बुद्धि) बाहर ढूँढ़ता है, बाहर से कुछ मिलेगा, कुछ क्रियाकाण्ड से, ऐसे-वैसे... आहाहा! परन्तु वह भगवान तो अन्तर में विराजमान है। आहाहा!

सच्चिदानन्द स्वरूप सत् शाश्वत्, चिदानन्द, ज्ञानानन्दस्वभाव — ऐसी परिपूर्ण चीज अन्तर में विराजमान है उसको पर्यायबुद्धि बाहर ढूँढ़ता है। आहाहा! समझ में आया? मानो कोई भगवान की भक्ति करने से भगवान आत्मा मिल जायेगा, कोई दया, दान, राग की ममता करने से भगवान आत्मा मिल जायेगा — ऐसे वर्तमान अंश को ही माननेवाला और अंश के पीछे अन्दर समीप में भगवान विराजमान है, उसको यह पर्यायबुद्धि नहीं ढूँढ़ता, पर्यायबुद्धि (वाला) बाहर ढूँढ़ता है। आहाहा! है? मानो सम्मेदशिखर की यात्रा करें तो भगवान मिल जायेगा, नहीं? ऐसा आया न? एक बार वन्दे जो कोई... आता है या नहीं? एक बार वन्दे जो कोई ताकै नरक पशु (गति) नहीं होय.... परन्तु नरक पशु नहीं होवे न? परन्तु चार गति नहीं हो — ऐसा तो आया नहीं। आहाहा! यह तो शुभभाव है, उसमें कोई आत्मा मिलता है — ऐसा है नहीं। आहाहा!

यह प्राणी पर्यायबुद्धि... भाषा बहुत संक्षिप्त है परन्तु मर्म बहुत है। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी सुखधाम अनन्त-अनन्त दिव्यशक्ति का देव (है), वह उसे अन्तर में है वहाँ नहीं ढूँढ़ता; यह पर्यायबुद्धि बाहर में ढूँढ़ता है। ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, देव-गुरु-शास्त्र की बहुत भक्ति, बहुत विनय करूँ तो वह प्राप्त होगा — ऐसी

पर्यायबुद्धि बाहर रहता है। आहाहा! छह प्रकार का तप है न? वह अभ्यन्तर, बारह प्रकार के तप में छह अभ्यन्तर तप है न? प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, संज्झाय, ध्यान, व्युत्सर्ग, वह भी सब विकल्पात्मक बाह्य की क्रिया की अपेक्षा है। आहाहा! उससे रहित भगवान जहाँ है, वहाँ नजर नहीं करते और पर्याय में है नहीं, वहाँ नजर अनादि से पड़ी है। पर्याय में द्रव्य आया नहीं, द्रव्य रहता नहीं, द्रव्य है नहीं। आहाहा!

अरे! ऐसा समय कहाँ मिले? कठिनता से मनुष्यपने में इस जाति का क्षयोपशम ज्ञान और उसे सुनने को मिला परन्तु अन्तर में जाना.... आहाहा!

श्रोता : पर्याय में द्रव्य रहता नहीं, या पर्याय में द्रव्य आया नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में द्रव्य आया नहीं, पर्याय द्रव्य में गयी नहीं।

श्रोता : वाह रे वाह!

आहाहा! और वहाँ पर्याय में वर्तमान अंश में ढूँढ़ते हैं, वहाँ से मिल जायेगा? ज्ञान का क्षयोपशम बहुत हुआ तो उससे मिल जायेगा? वह तो पर्याय-क्षयोपशम पर्याय है, उसमें वह कोई अखण्ड तत्त्व नहीं है। आहाहा! मन्दराग की क्रिया करते-करते अन्तर में ऐसा कि आत्मद्रव्य मिल जायेगा.... वह तो पर्यायबुद्धि है, बहिरात्मा है। कहा न?

पर्यायबुद्धि, बहिरात्मा, बहिर आत्मा, बाहर ढूँढ़नेवाला; बहिर अर्थात् स्वरूप में नहीं — ऐसी चीज को शोधकर, उससे मिलेगा, वह बहिरात्मा है। आहाहा! बापू, मार्ग बहुत सूक्ष्म है! **उसे बाहर ढूँढ़ता है, वह महा अज्ञान है।** आहाहा! अन्तर में दिव्यशक्ति देव विराजमान (है) अन्तर में जाता नहीं। आहाहा! तल में.... जैसे पाताल में पानी भरा है, वैसे तल में पूर्णानन्द भगवान भरा है। पर्याय से भिन्न जो है, उसका अनुभव करती है पर्याय। आहाहा!

जो त्रिकाली ज्ञायकभाव का अनुभव पर्याय में होता है परन्तु पर्याय के आश्रय से द्रव्य का अनुभव नहीं होता। आहाहा! और बाद में भी अनुभव की पर्याय के आश्रय से चारित्र और केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा! यह तो ज्ञायक चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण की खान के आश्रय से चारित्र और केवलज्ञान होगा। आहाहा! लोग बाहर ढूँढ़ते हैं परन्तु वह अज्ञान है। यह चौदहवीं गाथा की बात की, अब पन्द्रहवीं।

कलश - १३

अब, 'शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है' इस प्रकार आगे की गाथा की सूचना के अर्थरूप काव्य कहते हैं —

(वसन्ततिलका)

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंप-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः संमतात्॥ १३॥

श्लोकार्थ : [इति] इस प्रकार [या शुद्धनयात्मिका आत्म-अनुभूतिः] जो पूर्व कथित शुद्धनयस्वरूप आत्मा की अनुभूति है [इयम् एव किल ज्ञान-अनुभूतिः] वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है, [इति बुद्ध्वा] यह जानकर तथा [आत्मनि आत्मानम् सुनिष्प्रकम्पम् निवेश्य] आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके, [नित्यम् समन्तात् एकःअवबोध-घनः अस्ति] 'सदा सर्व ओर से एक ज्ञानघन आत्मा है', इस प्रकार देखना चाहिए।

भावार्थ : पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके कहा था; अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं कि शुद्धनय के विषयस्वरूप आत्मा की अनुभूति ही सम्यक्ज्ञान है॥ १३॥

कलश-१३ पर प्रवचन

अब '**शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की अनुभूति....** इस चौदहवीं (गाथा) में दर्शन प्रधान करके त्रिकाली ज्ञायक की अनुभूति वह सम्यग्दर्शन है — ऐसा कहा। समझ में आया? यहाँ ज्ञान की अनुभूति है, वह ज्ञान की अनुभूति है। क्या कहते हैं? जो ज्ञायकस्वभाव शुद्ध चैतन्य, उसका अनुभव वही ज्ञान का अनुभव है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा को ज्ञान की प्रधानता से ज्ञान की अनुभूति है, जो आत्मा की अनुभूति है, वही ज्ञान की अनुभूति है। पन्द्रहवीं गाथा में ज्ञान की अनुभूति की प्रधानता से कथन है। आहाहा!

ज्ञान की अनुभूति का अर्थ क्या ? जो त्रिकाली ज्ञायक ज्ञानस्वरूप है, उसको ग्रहण करके असाधारण ज्ञानस्वभाव जो त्रिकाल है, उसको ग्रहण करके अनुभव करना। प्रवचनसार में आया है, ज्ञान अधिकार में। असाधारण ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करके पर्याय में अनुभव करना... आहाहा! प्रवचनसार ज्ञान अधिकार में आया है। ज्ञान अधिकार है न पहले, दूसरा दर्शन अधिकार है, ज्ञेय अधिकार कहो या दर्शन अधिकार; तीसरा चरणानुयोग अधिकार है तीन। आहाहा! तो वहाँ ऐसा लिया है कि असाधारण ज्ञानस्वभाव, एक गुण दूसरे गुण में, ऐसी चीज है नहीं। वह गुण दूसरे में है नहीं, यह गुण दूसरे में है नहीं — ऐसे असाधारण गुण तो कारणरूप से ग्रहण करके.... ऐसा पाठ संस्कृत टीका में है। समझ में आया ?

यह ज्ञायक है, वह ज्ञानस्वभाव वस्तु है। शक्कर का अनुभव कहो या मीठेपन का, मीठापन कहते हैं न ? (मिठास) मिठास का अनुभव कहो। ऐसे आत्मा का त्रिकाल का अनुभव कहो, या उसके ज्ञान का अनुभव कहो। आहाहा! यह ज्ञान क्या ? शास्त्रज्ञान नहीं, क्षयोपशमज्ञान की पर्याय वह भी यह नहीं, क्षायिकज्ञान की पर्याय तो अभी है नहीं, वह तो बात नहीं। यह ज्ञान अर्थात् त्रिकाली ज्ञानस्वरूप जो पिण्ड प्रभु का अनुभव है। ज्ञान का — क्षयोपशमज्ञान की पर्याय का अनुभव, वह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो जैसा आत्मा त्रिकाली है, उसका ज्ञानस्वभाव त्रिकाली है, उस ज्ञान का अनुभव यहाँ लेना है। आहाहा! पर्याय का अनुभव-ज्ञान की पर्याय का अनुभव वह नहीं। त्रिकाली ज्ञान का अनुभव, आहाहा! समझ में आया ?

इस चौदहवीं गाथा में दर्शन प्रधान कथन था। अब यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है; तो यह कहते हैं कि **शुद्धनय के विषय...** ध्येय-धर्मी का ध्येय, सम्यग्दृष्टि का ध्येय ध्रुव.... सम्यग्दृष्टि का ध्येय ध्रुव, ध्यान का विषय ध्रुव, आहाहा! ऐसी बात है! उसको विषयभूत बनाकर, **आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है।** यह तो वही आत्मा का अनुभव कहो या ज्ञान की अनुभूति कहो, दोनों एक ही बात है। गुणी का अनुभव कहो या ज्ञान-गुण का अनुभव कहो। आहाहा!

श्रोता : महाराज! हमको तो मोक्षमार्ग सुनाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी गाथा चलती है। यह मोक्षमार्ग यह है। जो मुक्तस्वरूप

भगवान आत्मा का अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है, सम्यग्ज्ञान की, चारित्र तो पीछे सोलह (गाथा में) लेंगे।

चौदह में दर्शन अधिकार, पन्द्रह में ज्ञान मुख्य अधिकार, सोलह में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का अधिकार। चौदह, पन्द्रह और सोलह (गाथा)। समझ में आया? सोलह में वह — चारित्र लेंगे। यहाँ तो अभी ज्ञानदर्शन का अधिकार कहा। ऐसे इस आत्मा का अनुभव वह सम्यग्दर्शन, तो ऐसे ज्ञान का अनुभव भी सम्यग्ज्ञान और वह सम्यग्दर्शन। आहाहा! ऐसी बहुत कठिन बातें हैं। धीरज बिना यह वस्तु अन्तर में पकड़ में आवे ऐसी नहीं है बापू! आहाहा! बहुत धीरज चाहिए। अपनी पर्याय को द्रव्यसन्मुख झुकाना, वह कोई साधारण बात नहीं है। समझ में आया? वर्तमान पर्याय को.... आहाहा! उसका तल जो ध्रुव, उस ओर झुकाना वह अलौकिक बात है। है?

श्रोता : वही विधि बताओ महाराज।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही वस्तु है, यह कहेंगे।

इस प्रकार आगे की गाथा की सूचना के अर्थरूप काव्य कहते हैं। १५ वीं गाथा की सूचना के उपोद्घातरूप श्लोक कहा जाता है। १३,

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंप-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः संमतात्॥ १३॥

आहाहा! कलश है कलश यह तो.... मन्दिर में कलश चढ़ावे ऐसा कलश है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य! उसमें नाम आता है न, भाई! जगमोहनलालजी ने अभी टीका का नाम दिया न? 'अमृत कलश'। यह अमृत कलश। यह फूलचन्दजी पण्डितजी का उसमें लेख है। अभी इस कलश-टीका का अर्थ जगमोहनलालजी ने किया है न, तो उसका नाम दिया है, 'अमृत'.....

श्रोता : सब अपना अभिप्राय लिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ख्याल में है, वह तो ख्याल में है और तुमने ऐसा लिखा है अन्दर थोड़ा, कि ऐसी दृष्टि रखकर समझना। पता है, यह पता है। आपका लेख देखा है, ठीक लिखा है और कोई पूछते थे इससे यह फूलचन्दजी ने ऐसा उसमें क्यों लिखा? आहाहा! मुझसे पूछते थे। कहा — भाई! उसने जैनतत्त्व मीमांसा में जगमोहनलालजी ने लिखा था तो उन्होंने लिखा परन्तु फिर भी अन्तिम अक्षर ऐसा है उसमें पण्डितजी का है, पता है कि ऐसे त्रिकाल के ज्ञायक की दृष्टि में लेकर समझो। आहाहा! उसको पढ़ो यह दृष्टि करके ऐसे पढ़ना। व्यवहार से होगा और ऐसे होगा, ऐसी दृष्टि से नहीं पढ़ना, पण्डितजी ने लिखा है। आहाहा! यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य के अमृत कलश! आहाहा! क्या कहते हैं देखो!

इस प्रकार 'या शुद्धनयात्मिका आत्म-अनुभूतिः' जो पूर्व कथित शुद्धनय -स्वरूप आत्मा की अनुभूति है.... द्रव्य की। आत्मा ज्ञायक त्रिकाली का अनुभव। है? **वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है,....** क्या कहा? त्रिकाली ज्ञायक जो ध्रुव स्वभावभाव, उसका अनुभव, वही उसका — ज्ञानस्वरूप भगवान — उसका वह अनुभूति है। गुण से लो तो ज्ञान की अनुभूति है, द्रव्य से लो तो आत्मा की अनुभूति है। वस्तु तो एक की एक है। आहाहा! अरे भाई! ऐसा कहाँ मिले, बापू! अरे! यह मनुष्यपना बिखर जाता है, समय चला जाता है। आहाहा! करने की चीज तो यह है, बाकी सब.... आहाहा! **शुद्धनयस्वरूप....** देखा? भगवान कायम त्रिकाली शुद्धनय परन्तु उसकी अनुभूति भी शुद्धनयस्वरूप, आहाहा! **वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है, यह जानकर....** क्या कहा? समझ में आया? वस्तु जो स्वयं देव दिव्य, ध्रुववस्तु ज्ञायक आत्मा का अनुभव कहो या उसके ज्ञान-गुण को कारण बनाकर अनुभव कहो, दोनों एक बात है। आहाहा! **अनुभूति है, यह जानकर 'सुनिष्प्रकम्पम् निवेश्य' आत्मा में....** क्या कहते हैं देखो अब! भगवान ज्ञायकस्वरूप में **आत्मा को निश्चल स्थापित करके,....** परद्रव्य का बिल्कुल सहारा नहीं है — ऐसा कहते हैं। जिसमें विकल्प आदि परद्रव्य का, निमित्त का या देव-गुरु का भी सहारा नहीं है। आहाहा! अपने **आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके,....** समझ में आया? है? **'आत्मनि आत्मानम् सुनिष्प्रकम्पम्**

निवेश्य', निवेश्य.... आहाहा! **आत्मा में आत्मा को....** आत्मा को कहा अर्थात् अपनी निर्मल परिणति के द्वारा अन्दर स्थापना करो, उसको कोई राग और निमित्त का सहारा जिसमें नहीं है। आहाहा! बहुत बात....

यह शुरुआत की वस्तु ही यह है। यहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। चारित्र तो बाद में, यहाँ तो दर्शन का अधिकार कहा, यह ज्ञान का अधिकार; चारित्र तो बाद में परन्तु जहाँ दर्शन और ज्ञान ही सच्चे नहीं वहाँ चारित्र कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया?

आत्मा में.... आत्मनि... है न? **आत्मानम्... आत्मा को....** अपने आत्मा में अपने आत्मा को निर्मल स्वभाव द्वारा स्थापित करके, आहाहा! वह राग और पर से स्थापित नहीं होता है — ऐसा बताते हैं। अपने स्वरूप को अपने स्वरूप से अन्दर स्थिरता कर। आहाहा! **आत्मा को आत्मा में....** आहाहा! भगवान चिदानन्द प्रभु ऐसे आत्मा को **आत्मानम्** अर्थात् अपनी शक्ति में स्थापन कर, निवेश कर, निवेश कर, स्थापित कर, वहाँ वास ले। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

यह कोई पाँच-पच्चीस लाख खर्च कर दे और यहाँ धर्म हो जाये — ऐसा नहीं है। दो-पाँच-दस मन्दिर-बन्दिर बनवा दिये, गजरथ चला दे तो धर्म हो जाये (ऐसा) तीन काल में है नहीं। पर के सहारे बिना आत्मा में आत्मा को (स्थापित करके) आहाहा!

श्रोता : आत्मा को खुद अभेद जाने, निर्मलपना स्वभाव है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अरे! प्रभु का मार्ग तो यह है, भाई!

श्रोता : महाराज! ऐसा कहेंगे फिर कोई मन्दिर नहीं बनायेगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बने, बना सकते ही नहीं। वह होना है तो होगा, होगा, उससे बनता ही नहीं। वह परमाणु पुद्गल की पर्याय जिस समय जहाँ उत्पन्न होने की है, वह उत्पन्न होगी ही, पर से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : आत्मा में का अर्थ द्रव्य है या पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में आत्मा की पर्याय स्वभाव द्वारा स्थापन करना — ऐसा कहते हैं, राग द्वारा नहीं, पर द्वारा नहीं। अपनी निर्मलपर्याय द्वारा आत्मा में स्थिर होना, आहाहा!

आत्मा में आत्मा को.... पहले आत्मा में, आत्मा को अर्थात् निर्मल पर्याय द्वारा स्थिरता करके, वह निर्मल पर्याय / अनुभूति, वह आत्मा है। यह पहले चौदहवीं (गाथा) में आ गया है। आत्मा कहो, शुद्धनय कहो, अनुभूति कहो — तीन बोल चौदहवीं (गाथा) में आ गये हैं। संस्कृत टीका का पाठ है। समझ में आया? आहाहा! यह भगवान पूर्णानन्द और पूर्णज्ञानस्वरूप प्रभु, उसकी निर्मल परिणति द्वारा वहाँ आगे स्थापना कर, आत्मा में स्थापना वहाँ कर। राग और पुण्य और व्यवहार से अन्तर में स्थापना कर, यह चीज है ही नहीं। समझ में आया? लो, यह बात! शोर यह है न कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा.... बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तेरी चीज, तेरी चीज की शुद्धपरिणति द्वारा वहाँ जा; उसका सहारा राग का और परद्रव्य का बिल्कुल नहीं है — ऐसी चीज है। पहले उसका ज्ञान में निर्धार-नक्की तो करे कि राग से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती; अपनी निर्मल परिणति द्वारा प्राप्ति होती है। आहाहा! अरे! उसकी कायम रहनेवाली चीज कौन, क्या है? वह तो ज्ञान आनन्दादि कायम रहने की चीज है। राग आदि कोई चीज उसकी नहीं और एक समय की पर्याय भी कायम रहने की चीज नहीं तो यह निर्मलपर्याय प्रगट करके आत्मा में वहाँ स्थाप। आहाहा! दृष्टि की दौरे वहाँ रखकर निर्मलपरिणति प्रगट कर, वहाँ आत्मा में जा। आहाहा! ऐसी बात है।

दूसरे प्रकार से कहें तो जो निर्मलपरिणति है, वह षट्कारक से परिणति उत्पन्न होती है। क्या कहा? जो द्रव्य है, उसमें षट्कारक शक्तिरूप से तो पड़े हैं परन्तु जो परिणति होती है — सम्यग्ज्ञान की, सम्यग्दर्शन की, अनुभूति की — वह भी षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होती है। क्या कहा? समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय और सम्यग्ज्ञान की, अनुभूति की पर्याय, वह पर्याय, पर्याय की कर्ता; पर्याय उसका कार्य; पर्याय उसका साधन-पर्याय साधन; पर्याय उसका सम्प्रदान; पर्याय से पर्याय हुई; पर्याय के आधार से पर्याय हुई। आहाहा!

श्रोता : साधक तो कारणसमयसार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पर्याय साधक है। राग से भिन्न पड़कर आत्मा का साधन किया, वह पर्याय साधक है। आहाहा! राग-बाग साधक है नहीं।

श्रोता : समयसार साधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार, वह आत्मा; यह समयसार की भाषा भी वहाँ आधार नहीं। यह समयसार पढ़कर जो ज्ञान हुआ, वह उसका कारण नहीं। आहाहा! क्यों? अरे! भगवान के पास सुना, समयसार अर्थात् आत्मा, उसके लक्ष्य में आया कि भगवान ऐसा कहते हैं परन्तु उस ज्ञान के आधार से अन्दर में जा सकते हैं — ऐसा नहीं है। आहाहा! क्यों? वह पर्याय परलक्ष्यी है और स्वलक्षी पर्याय द्वारा अन्तर में जाना। आहाहा! बंडीजी! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! अरे! मनुष्यपना जाता है भाई! यह आँखें बन्द करके कहाँ जायेगा? यदि यह (स्वभाव का) पता नहीं लिया, आहाहा! तो कहीं कोई शरण नहीं है। आहाहा!

इस भगवान आत्मा को, आत्मा की निर्मलपरिणति द्वारा वहाँ निवेश, स्थाप। अत्यन्त निरालम्बन-पर का अवलम्बन बिल्कुल नहीं। समझ में आया? आहाहा! अपने ज्ञायकभाव का अवलम्बन लेकर जो परिणति उत्पन्न हुई, वह आत्मा है — ऐसा उसको कहा। आत्मा को आत्मा से अर्थात् निर्मल परिणति द्वारा अन्दर स्थिर हो, आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

स्थापित करके, 'नित्यम् समन्तात् एकःअवबोध-घनः अस्ति'.... जो प्रभु आत्मा **'सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है',....** आहाहा! **इस प्रकार देखना चाहिए।** इस प्रकार अनुभव करना चाहिए। आहाहा! ऐसा मार्ग! लोगों को एकान्त लगता है न? कि यह भी, उसके लिये कोई साधन है या नहीं? ऐसा कहते थे। श्रीमद् में गये थे न, अगास आश्रम, व्याख्यान सुना एक घण्टा, बाद में आये, एक मारवाड़ी कि आप कहते हैं, वह ठीक परन्तु उसका कोई साधन? साधन यह बाह्य; क्योंकि आत्मसिद्धि में भी ऐसा आता है। 'निश्चय राखि लक्ष्य मा साधन करना सोहि' यह साधन है ही नहीं भाई! आहाहा! यह प्रज्ञाछैनी-राग से भिन्न करके जो हुआ वही साधन है। प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा में भेद करके-पर से भेद करके अन्तर में जा। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का यह कथन है प्रभु! यह कोई कल्पित अज्ञानी का यह कथन नहीं है। सन्त कहते हैं, वह सर्वज्ञ ने कहा, वे उनके आडतिया होकर कहते हैं, मार्ग तो भगवान ऐसा कहते हैं, हम तुम्हें कहते हैं। हमने भी ऐसा कहा है ऐसा न कहकर.... आहाहा! जिनवर ऐसा कहते हैं। आता है न? बहुत सी गाथाओं में (आता है) जिनवर

ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा का आश्रय लेकर बोलते हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं **सदा सर्व ओर....** क्या कहते हैं? सदा अर्थात् त्रिकाल, सर्व ओर चारों तरफ से एक ज्ञानघन भगवान.... ज्ञान की अनुभूति लेना है न? आत्मा की अनुभूति में द्रव्य की अनुभूति लेना, एक ज्ञानघन ज्ञानपुंज ज्ञानपिण्ड आत्मा है, **इस प्रकार देखना चाहिए।** आहाहा!

श्रोता : घन क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : है! पिण्ड, ज्ञान का पिण्ड.... जैसे रुई का पिण्ड है न गाँठें, क्या ढोकड़ा, ढोकड़ा क्या कहते हैं? गठरी, रुई की बड़ी गठरी नहीं आती? रुई की; ऐसे यह ज्ञान की गठरी है अन्दर। स्वभाव-स्वभाव, ज्ञानस्वभाव की गठरी है। आहाहा! भगवान! मार्ग बहुत ऐसा है। अरे! इसको करना पड़ेगा, प्रभु! कोई दूसरा शरण नहीं है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ इन्द्रों के समक्ष ऐसा कहते थे, एक भवतारी इन्द्र जब सुनने को आते थे, वहाँ भी आते हैं अभी। भगवान महावीर प्रभु थे, वहाँ भी आते थे। इन्द्र और इन्द्राणी दोनों एक भवतारी हैं। अभी सौधर्म देवलोक में एक भवतारी-अन्तिम मनुष्य देह होकर मोक्ष जानेवाले हैं। उनके समक्ष भगवान यह कहते थे। आहाहा! उनको तो पता है, सम्यग्दृष्टि हैं। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तुम आत्मा की अनुभूति.... हमने कहा, अब तो हम कहते हैं कि ज्ञान की अनुभूति, वह गुणी की अनुभूति कहा था, अब गुण का अनुभव, परन्तु गुण वह ज्ञानघन अखण्ड पूर्ण है, गुण भिन्न गुण ऐसा नहीं। उस गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा ज्ञानघन है — ऐसा कहा न? एक ज्ञानगुण भिन्न ऐसा नहीं। आहाहा! यह ज्ञानघन है, सदा सर्व त्रिकाल, चारों ओर से एक ज्ञानघन आत्मा है। प्रभु! आहाहा!

इस प्रकार देखना चाहिए। इस प्रकार अन्दर में देखना-अनुभव करना। आहाहा!

भावार्थ : पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके कहा था; अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं कि शुद्धनय के विषयस्वरूप आत्मा की अनुभूति ही सम्यग्ज्ञान है।

गाथा १५

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

यः पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यविशेषम्।
अपदेशसान्तमध्यं पश्यति जिनशासनं सर्वम्॥

येयमबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूतिः सा खल्वखिलस्य जिनशासनस्यानुभूतिः, श्रुतज्ञानस्य स्वयमात्मत्वात्; ततो ज्ञानानुभूति–रेवात्मानुभूतिः। किन्तु तदानीं सामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यामनुभूयमानमपि ज्ञानमबुद्धलुब्धानां न स्वदते। तथा हि – यथा विचित्रव्यंजनसंयोगोपजातसामान्य–विशेषतिरोभावाविर्भावाभ्यामनुभूयमानं लवणं लोकानामबुद्धानां व्यंजनलुब्धानां स्वदते, न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजातसामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्याम्; अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं लवणं तदेव सामान्याविर्भावेनापि। तथा विचित्रज्ञेयाकारकरम्बितत्वोपजातसामान्यविशेषतिरोभावाविर्भावाभ्यामनुभूयमानं ज्ञानमबुद्धानां ज्ञेयलुब्धानां स्वदते, न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजातसामान्यविशेषाविर्भाव–तिरोभावाभ्याम्; अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं ज्ञानं तदेव सामान्या–विर्भावेनापि। लुब्धबुद्धानां तु यथा सैन्धवखिल्योऽन्यद्रव्यसंयोगव्यवच्छेदेन केवल एवानुभूयमानः सर्वतोऽप्येकलवणरसत्वाल्लवणत्वेन स्वदते, तथात्मापि परद्रव्यसंयोग–व्यवच्छेदेन केवल एवानुभूयमानः सर्वतोऽप्येकविज्ञानघनत्वात् ज्ञानत्वेन स्वदते।

अब, इस अर्थरूप गाथा कहते हैं —

अनबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जो अविशेष देखे आत्म को,
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखे अहो॥१५॥

गाथार्थ : [यः] जो पुरुष [आत्मानम्] आत्मा को [अबद्धस्पृष्टम्] अबद्धस्पृष्ट, [अनन्यम्] अनन्य, [अविशेषम्] अविशेष (तथा उपलक्षण से नियत और असंयुक्त) [पश्यति] देखता है वह [सर्वम् जिनशासनं] सर्व जिनशासन को [पश्यति] देखता है - जो जिनशासन [अपदेशसांतमध्यं][१] बाह्य द्रव्यश्रुत तथा अभयन्तर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है।

टीका : जो यह अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति है, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है, क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। परन्तु अब यहाँ, सामान्य ज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना) और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव (आच्छादन) से जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है, तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है, तथापि जो अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं, उन्हें वह स्वाद में नहीं आता। यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैं :— जैसे अनेक प्रकार के शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव और विशेष लवण के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला जो (सामान्य के तिरोभावरूप और शाकादि के स्वाद भेद से भेदरूप-विशेषरूप) लवण है, उसका स्वाद अज्ञानी, शाक लोलुप मनुष्यों को आता है किन्तु अन्य की सम्बन्धरहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला जो एकाकार अभेदरूप लवण है, उसका स्वाद नहीं आता और परमार्थ से देखा जाये तो, विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण है।

इस प्रकार — अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव और विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (विशेषभावरूप, भेदरूप, अनेकाकाररूप) ज्ञान वह अज्ञानी, ज्ञेय-लुब्ध जीवों के स्वाद में आता है किन्तु अन्य ज्ञेयाकार की संयोग रहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला एकाकार अभेदरूप ज्ञान स्वाद में नहीं आता, और परमार्थ से विचार किया जाये तो, जो ज्ञान, विशेष के

(१. अपदेश : द्रव्यश्रुत; सान्त : ज्ञानरूपी भावश्रुत)

आविर्भाव से अनुभव में आता है, वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है ? अलुब्ध ज्ञानियों को तो, जैसे सैंधव की डली, अन्य द्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके केवल सैंधव का ही अनुभव किये जाने पर, सर्वतः एक क्षाररसत्व के कारण क्षाररूप से स्वाद में आती है, उसी प्रकार आत्मा भी, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके केवल आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण ज्ञानरूप से स्वाद में आता है।

भावार्थ : यहाँ आत्मा की अनुभूति को ही ज्ञान की अनुभूति कहा गया है। अज्ञानीजन ज्ञेयों में ही — इन्द्रियज्ञान के विषयों में ही लुब्ध हो रहे हैं; वे इन्द्रियज्ञान के विषयों से अनेकाकार हुए ज्ञान को ही ज्ञेयमात्र आस्वादन करते हैं परन्तु ज्ञेयों से भिन्न ज्ञानमात्र का आस्वादन नहीं करते। और जो ज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त नहीं हैं, वे ज्ञेयों से भिन्न एकाकार ज्ञान का ही आस्वाद लेते हैं — जैसे शाकों से भिन्न नमक की डली का क्षारमात्र स्वाद आता है, उसी प्रकार आस्वाद लेते हैं, क्योंकि जो ज्ञान है सो आत्मा है और जो आत्मा है सो ज्ञान है। इस प्रकार गुण-गुणी की अभेद दृष्टि में आनेवाला सर्व परद्रव्यों से भिन्न, अपनी पर्यायों में एकरूप निश्चल, अपने गुणों में एकरूप, परनिमित्त से उत्पन्न हुए भावों से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव, ज्ञान का अनुभव है; और यह अनुभवन भावश्रुतज्ञानरूप जिनशासन का अनुभवन है। शुद्धनय से इसमें कोई भेद नहीं है।

गाथा - १५ पर प्रवचन

अब, इस अर्थरूप गाथा कहते हैं —

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

अनबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जो अविशेष देखे आत्म को,
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखे अहो॥१५॥

है ? अपदेस में द्रव्य लिया। मज्झं शान्तिसूत्र सम्यग्दर्शन भावश्रुत लिया। यह कहते

हैं या नहीं? अपदेस में अखण्ड द्रव्य-अखण्ड प्रदेश लेना — ऐसी यहाँ बात है नहीं। समझ में आया? अभी छपा है समयसार में, ऐसा है नहीं। ऐसा कि द्रव्यश्रुत में भी, यह द्रव्यश्रुत शब्द ही द्रव्यश्रुत है। द्रव्यश्रुत में ऐसा कि अमृतचन्द्राचार्य द्रव्यश्रुत का अर्थ, उसमें से अपदेस का अर्थ निकाला ही नहीं, परन्तु यह अपदेस कहा वही द्रव्यश्रुत है। आहाहा! और द्रव्यश्रुत में से भावश्रुत कहना था, द्रव्यश्रुत में भी, कि अन्तर आनन्द का अनुभव करना, भावश्रुत द्वारा यह (वह) भावश्रुत है, द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा। आहाहा!

देखो, कलश-टीका है न, इसकी कलश-टीका। इस तेरहवें में इससे पहले तेरहवाँ श्लोक हो गया न अपने, उसकी कलश-टीका में ऐसा लिया है, कलश-टीका है न? कितना? १३ — देखो आत्मानुभव.... ऐसा कहते हैं। ज्ञानानुभव ऐसा कहा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं। गुजराती है, आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंग में दूसरा भी संशय उत्पन्न होता है.... राजमल की टीका है — कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है, द्वादशांग ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि कोई कहे तो ऐसा नहीं है, वह तो विकल्प है। पण्डितजी! यह तो द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है।

अब, अपने को तो अपदेस में से निकालना है। उसमें भी — द्वादशांग ज्ञान में भी ऐसा कहा है कि स्वानुभूति मोक्षमार्ग है। समझ में आया? बारह अंग में भी यह कहा है, यह द्रव्यश्रुत है, विकल्पात्मक भाव है, परन्तु कहा है उसमें यह कि आत्मा की अनुभूति मोक्षमार्ग है — ऐसा कहा। तो द्रव्यश्रुत में भी यह आया। इसलिए अमृतचन्द्राचार्य ने अपदेस का अर्थ नहीं किया, क्योंकि अपना सूत्र ही यही है, यह सूत्र ही अपदेस है। इस सूत्र में भी ऐसा कहा, द्रव्यश्रुत में और भावश्रुत तो, भावश्रुत तो उसको तो है। अन्तर अनुभव हुआ तो भावश्रुत ज्ञान द्वारा तो भावश्रुत में तो आत्मा ही जानने में आया था। आहाहा! इस कलश की टीका की है, यह गुजराती है, हिन्दी नहीं होगी, यहाँ हिन्दी में भी ऐसा है, द्वादशांग ज्ञान... यह अपदेस आया उसमें द्रव्यश्रुत आ गया।

उसमें अमृतचन्द्राचार्य ने तीन बोल लिये परन्तु पाँचों लेना। (गाथा) पन्द्रह में तीन बोल लिये हैं न पाँच में से? परन्तु यह तो गाथा में समेटना है, इस कारण से (तीन बोल लिये हैं) यह प्रश्न बहुत हुआ था। दस, दस की साल में, चौबीस वर्ष पहले। वह था न

मुख्तयार, दिल्ली वे कौन से मुख्तयार, हाँ! जुगलकिशोर (मुख्तयार) ये युगलजी गये? यह टीका की, और उसने की थी, पता है ऐसा कि यह तीन बोल है, तीन बोल लेना पाँच में से, परन्तु तीन में पाँच आते हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में लिया है न परन्तु वे टीका (आलोचना) करते थे, हमें पता है दस की साल, चौबीस वर्ष हुए। हम लाठी गये थे, वहाँ वह लेख आया था कि पन्द्रहवीं गाथा में तीन बोल कहे हैं, पाँच बोल में दो-दो बोल कहाँ से निकले? परन्तु अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं वह तो संक्षेप करके बनाया है, देखो, आहाहा!

टीका : टीका है न? **जो यह अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पाँच....** पाँचों ही निकाले हैं, अमृतचन्द्राचार्य ने निकाले हैं। अरे! लोग अपनी कल्पना करे — ऐसा नहीं चलता भाई! सन्तों की वाणी-दिगम्बर सन्त अर्थात् कौन? आहाहा! केवलज्ञान के टुकड़े हैं यह। अरे! एक बार तो ऐसा कहा कि केवलज्ञानी और मुनि में कोई अन्तर मत देखना, नियमसार (कलश २५३) में ऐसा कहा है। मुनि अर्थात् कौन? परमेश्वर पद! आहाहा! वहाँ वीतरागी आनन्द उछल रहा है। प्रचुर स्वसंवेदन जिसकी मोहरछाप है, पाँचवीं गाथा में आया है, वह पड़ा है न? प्रचुर स्वसंवेदन जिसकी मोहर छाप है। मुनिपने की भावलिंगी की छाप क्या, प्रचुर.... थोड़ा आनन्द का संवेदन तो चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) भी आता है परन्तु मुनि को तो प्रचुर स्वसंवेदन मोहर-छाप मारी है। पोस्टमास्टर पत्र को (छाप) मारते हैं या नहीं।

इसी प्रकार यह भगवान कहते हैं कि आहाहा! सन्तों की बातें बापू! उन्हें पकड़ना कठिन है — ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य और टीकाकार ने कहा कि मुनि अपने निज वैभव से कहेंगे। निज वैभव क्या? अपने आनन्द का जो अनुभव हुआ वह। इस निज वैभव की क्या चीज? यह स्व-संवेदन प्रचुर, बहुत अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन यह उसकी मोहर-छाप है, साधु के भावलिंग की मोहर-छाप (है), वहाँ से साधुपना चलता है। समझ में आया?

मार्ग ही ऐसा है। यह यहाँ कहते हैं। देखो! पाठ में तीन बोल लिये, अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष। असंयुक्त यह रह गया, वह उसमें आ गया। चौदहवीं (गाथा) में आ गया, उसमें ले लेना, तो वे मुख्तयार आलोचना करते थे। गये युगलजी गये नहीं। है? (श्रोता : राजकोट गये) राजकोट गये। जो अबद्धस्पृष्ट राग और कर्म के सम्बन्धरहित

आत्म चीज है। अनन्य — अन्य-अन्य गति आदि से भिन्न अनन्य है। नरक, मनुष्य आदि अन्य-अन्य गति से अनन्य और अन्य-अन्य नहीं, अन्य-अन्य नहीं, अनन्य है, अन्य-अन्य नहीं। आहाहा! नियत — पर्याय में अनेकता, पर्याय में आती है। अगुरुलघु आदि से (अनेकता आती है), उससे रहित नियत है। आहाहा! और अविशेष-गुणभेद से रहित सामान्य है। अविशेष कहो या सामान्य कहो (दोनों एकार्थ हैं) विशेष नहीं, आहाहा! **ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा की....** अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं कि पाँच भावस्वरूप इस गाथा में से लेना। लोग / व्यक्ति अपनी टीका करते हैं। और अपदेस का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य को समझ में नहीं आया, इसलिए नहीं किया — ऐसा कहते हैं — ऐसा समाचार-पत्र में आया था। अरे! प्रभु ऐसा नहीं कहना। अमृतचन्द्राचार्य! आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य सन्त कौन थे? आहाहा! वे चलते सिद्ध थे। भरतक्षेत्र में एक हजार वर्ष पहले थे। आहाहा!

श्रोता : काल का दोष आ गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : काल का दोष-बोष है नहीं। भैया! यह कहते थे कितने ही, आहाहा! यह उसका स्वच्छन्द का अज्ञानी का दोष है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे पाँच बोल स्वरूप अनुभूति, है? **पाँच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति.....** आत्मा के पाँच भाव... यहाँ तो बद्धस्पृष्ट को निकालकर अबद्धस्पृष्ट लिया तो ऐसे पाँच भावस्वरूप अस्तिरूप लिया। बद्धस्पृष्ट नहीं — ऐसा न लेकर अबद्धस्पृष्ट है, नियत है, अविशेष है — ऐसे भावस्वरूप — ऐसे पाँच भाव के अस्तिस्वरूप **आत्मा की अनुभूति है।** आहाहा!

यह देखो, इसमें द्रव्यश्रुत आ गया। द्रव्यश्रुत का अर्थ किया ही नहीं — ऐसा नहीं है, वह द्रव्यश्रुत यह है। आहाहा! समझ में आया? बहुत कठिन काम भाई! आहा! और सन्तों की भूल निकालना, (वह तो) परमेश्वर की भूल निकालने जैसा है!

श्रोता : सन्तों ने तो सन्तों की भूल निकाली न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सन्त कहाँ थे? अरे सूक्ष्म बात! किसी व्यक्ति का अपने को काम नहीं, अपने तात्त्विक बात की बात होती है, व्यक्तिगत बात तो समझनेवाला समझे। आहाहा! भाई! मुनि किसे कहते हैं? आहाहा! जिसको आत्मा के आनन्द की अनुभूति हो,

तदुपरान्त जिसको अनुभूति की ऊर्ध्वता बढ़ गयी हो, आहाहा! ऐसे आनन्द के झूले झूलता हो, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में झूलता हो, आहाहा! सातवें में आते हैं तो अतीन्द्रिय आनन्द में, छठे में आवें तो जरा विकल्प आ जाता है, तथापि अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की भूमिका प्रमाण तो है। समझ में आया? आहाहा! भाई! मुनिपना! भाई! बापू! अलौकिक चीज है। वह यहाँ कहते हैं।

यहाँ तो अभी सम्यग्ज्ञान की बात है। ऐसा आत्मा जो अबद्धस्पृष्ट है, मुक्तस्वरूप है, निश्चय है, सामान्य है, उसको अनुभव करना **ऐसे पाँच भावस्वरूप,** उसका नाम अनुभूति, आहाहा! **वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है,....** वह जैनशासन है, वीतरागी पर्याय-भावश्रुतज्ञान, वह जैनशासन है। द्रव्यश्रुत में तो यह कहा था। भावश्रुत में वह आत्मा अनुभव में आया, वह जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया? है?

ऐसा जैनशासन! जैनशासन कोई पक्ष नहीं। वह तो वस्तु अबद्धस्पृष्ट है, उसका अनुभव, वह जैनशासन तो वस्तु का स्वरूप है, (वस्तु की) स्थिति है। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : जैनशासन तो द्वादशांग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनशासन में बारह अंग में यह कहा है। यह कहा और बताया न अभी, बारह अंग में भी अनुभूति बताया है। बारह अंग का विशेष नहीं, विकल्प है, वह विशेष ज्ञान, विशेष नहीं। आहाहा! अन्तर की अनुभूति... आहाहा! इसमें कहा न नौवीं गाथा में — वह निश्चय श्रुतकेवली है (ऐसा कहा है)। अपना भगवान पूर्ण आनन्द आदि दिव्यशक्ति का भण्डार प्रभु का स्वरूप अबद्धस्पृष्टस्वरूप है, नियत स्वरूप है, सामान्य स्वरूप है, रागादि आकुलता से रहित स्वरूप है। आहाहा!

श्रोता : वह निश्चय श्रुतकेवली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही निश्चय श्रुतकेवली है। अनुभव है, भावश्रुत है न वहाँ? आहाहा! नौवीं गाथा में कहा है, नौवीं गाथा में कहा है।

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा॥९॥

नौवीं गाथा है। **जो हि सुदेणहिगच्छदि** भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं। वे यह **जो हि सुदेणहिगच्छदि** भावश्रुत द्वारा अन्दर में अनुभव करते हैं। **सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं** आहाहा! **तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा** लोकालोक के देखनेवाले सर्व केवली अथवा श्रुतकेवली, उन्हें श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा! नौ, नौवीं गाथा है, आहाहा! दसवीं व्यवहार की है, ग्यारहवीं समकित की है।

यहाँ कहते हैं कि वह जिनशासन यह। भगवान को कहना है ऐसी यह वीतरागी पर्याय। चार अनुयोग का तात्पर्य वीतरागभाव है — ऐसा १७२ गाथा में (पंचास्तिकाय में) कहा है। ऐसे सूत्र तात्पर्य का अर्थ क्या, शास्त्र तात्पर्य? कि वीतरागता — ऐसा पाठ है। १७२ गाथा — चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता पर्याय में आना, वह तात्पर्य है। वह वीतरागता कब-कैसे आयेगी? कि जो त्रिकाली ज्ञायक अबद्धस्पृष्ट है, वह वीतरागस्वरूप है। उसके आश्रय से वीतरागी पर्याय आयेगी — ऐसे चारों अनुयोगों में आत्मा-वीतरागस्वरूप का आश्रय लेना यह कहा है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा!

यह तो कुन्दकुन्दाचार्य, परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव के पास गये थे। अब उन्हें ही उड़ाते हैं कि महाविदेह में नहीं गये थे। अरे प्रभु! तू क्या करता है? जयसेनाचार्य की पंचास्तिकाय की टीका है, उसमें लिखा है — महाविदेह में जाकर आये और शिवराजकुमार के लिए (यह ग्रन्थ) बनाया — ऐसा पाठ है और देवसेनाचार्य का दर्शनसार है, उसमें तो ऐसा लिखा है — अरे! कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में जाकर यदि यह नहीं लाये होते तो हमें मुनिपना कैसे प्राप्त होता? — ऐसा लिखा है। दर्शनसार! आहाहा! देवसेनाचार्य! यह तो महामुनि कहते हैं, बाकी तो अष्टपाहुड़ की टीका है न? वह श्रुतसागर भट्टारक जैसा है वह तो, उसकी प्रत्येक पाहुड़ के पीछे यह लिखा है — कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह से आये थे परन्तु यह तो दर्शनसार-देवसेनाचार्य, पंचास्तिकाय -जयसेनाचार्य.... ऐसा पाठ है। आहाहा!

श्रोता : उन्होंने कहा वह तो ठीक, सोनगढ़ में क्यों कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बस सोनगढ़ में कहते हैं, उसका विरोध करना है। सोनगढ़वाले कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे तो (अपर पक्षवाले) कहते हैं कि नहीं।

श्रोता : उसमें भी प्रयोजन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोजन है।

यह बात तो ऐसी है। यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं — जिनशासन किसे कहें? चार अनुयोग का सार किसे कहें? कि अपने अबद्धस्पृष्ट की अनुभूति करे, वह भावश्रुतज्ञान, वह शुद्ध उपयोग भावश्रुतज्ञान वह जिनशासन है। द्रव्यश्रुत में भी यह कहा है और भावश्रुत यह है। आहाहा! यह कहा न, इस तेरहवें कलश की टीका में कि द्वादशांग विकल्प है परन्तु कहा है अनुभूति, बारह अंग में कहने का आशय तो यह प्रभु आत्मा, उसकी अनुभूति का आश्रय ले — द्रव्य का (आश्रय ले) तो अनुभूति होगी और वह अनुभूति वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय कहो या जैनशासन कहो, आहाहा! कहो इसमें समझ में आये ऐसा है, इसमें न समझ में आये ऐसी बात नहीं है। बहुत सरस, सरल सीधी बात है। आहाहा! ऐसी बात है प्रभु!

श्रोता : बहुत स्पष्टीकरण किया महाराज! बहुत स्पष्ट!

पूज्य गुरुदेवश्री : अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पाँच भावस्वरूप.... देखो, ऐसा भगवान, ऐसे पाँच भावस्वरूप है यों। आत्मा ऐसे पाँच भावस्वरूप है। समझ में आया? ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा है। देखो! आहाहा! अबद्धस्पृष्ट, अनन्य-अन्यत्व अर्थात् अन्य-अन्य नहीं, नियत, निश्चय सामान्य और असंयुक्त राग से संयुक्त नहीं — ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा। आहाहा! ऐसे पाँच भावस्वरूप भगवान आत्मा, त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ऐसे पाँच भावस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है। अबद्ध अर्थात् मुक्तस्वरूप है, निश्चय है, राग से रहित है, और सामान्यस्वरूप है। आहाहा! और पर्याय की अनेकता से भिन्न एकरूप है। आहाहा! ऐसी बातें हैं बापू!

ऐसे पाँच भावस्वरूप.... ऐसा है न? **ऐसे पाँच भावस्वरूप....** ऐसे पाँच भावस्वरूप अर्थात्? **जो यह अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पाँच भावस्वरूप....** आहाहा! आत्मा की अनुभूति वह पर्याय (है) इन पाँच भावस्वरूप तो आत्मद्रव्य है। आहाहा!

समयसार तो वीतराग की साक्षात् वाणी.... ! आहाहा ! जगत् का भाग्य कि यह शास्त्र रह गया है। आहाहा !

श्रोता : आप पधारे हमारा भाग्य !

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! हमें तो खेद होता है। अरे रे ! हम कहाँ थे और कहाँ आ पड़े हैं ? अरे...रे ! कहाँ हम प्रभु के पास थे और यहाँ आ पड़े हैं, बापू ! आहा !

श्रोता : हमको तो हर्ष होता है न !

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात तो तीर्थंकर के घर की बात है प्रभु ! आहाहा ! सार गजब बात है, भाग्य है जगत् का कि ऐसी वाणी इसे कान में पड़ती है। आहाहा !

भगवान आत्मा कैसा है ? कि अबद्धस्पृष्ट है, राग से और विसश्रा परमाणु से स्पर्श नहीं, सम्बन्ध नहीं और अनन्य है, अनन्य है — अन्य-अन्य गति वह नहीं। अनन्य है — वह का वही है — ऐसा का ऐसा (है)। आहाहा ! नियत है। पर्याय में अनेकता हो — ऐसा नहीं। नियत है, निश्चय है। आहाहा ! और गुण का विशेष भेद उसमें नहीं — ऐसा वह सामान्य है और असंयुक्त अर्थात् राग की आकुलता से रहित है, वह आनन्द प्रभु है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे पाँच भावस्वरूप.... आहाहा ! **आत्मा की अनुभूति....** ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति, आहाहा ! **वह निश्चय से समस्त जिनशासन....** सारे जैनशासन का यह सार है। आहाहा ! समझ में आया ? **निश्चय से समस्त जिनशासन,** समस्त जैनशासन, चारों अनुयोगों के सूत्र में और जैनशासन, भावश्रुत में यह है। आहाहा ! समझ में आया ? भावश्रुत अबद्धस्पृष्ट को अनुभवे, वह जैनशासन है। भावश्रुत अबद्धस्पृष्ट को अनुभवे, वह जैनशासन है। अर्थात् इस पाँच भावस्वरूप वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की अनुभूति — वीतरागी पर्याय, वह जैनशासन है। आहाहा ! **क्योंकि ?** यह विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)